

संस्कृत साहित्य में संगीत—कला

डॉ. ओम प्रकाश बैरवा

सह आचार्य संस्कृत

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

झालावाड़ (राज0)

शोध आलेख सार

संस्कृत मनोषियों ने संस्कृत साहित्य को दो भागों में विभाजित किया है— वैदिक संस्कृत का साहित्य एवं लौकिक संस्कृत का साहित्य। संगीत तत्व दोनों ही साहित्यों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य संगीतात्मकता से परिपूर्ण है। ऋग्वेद की ऋचाओं में गीतात्मक तत्व पूर्ण रूप से समाहित है। सामवेद तो संगीत का आदि ग्रन्थ माना गया है। साम में गान ही प्रमुख है। उसमें गान क्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त लौकिक साहित्य में कालिदास, जयदेव आदि महान् कवियों की कृतियाँ एवं सम्पूर्ण साहित्य में प्रचुर मात्रा में गीतात्मक तत्व विद्यमान है। काव्यकारों के संगीत ज्ञान की द्योतक उनकी रचनाएं हैं, क्योंकि उन्होंने विशेषरूप में गीति काव्यों का प्रणयन किया।

मुख्य शब्द

नृत्तावसान, नटराज, विभूतियोग, मृदंगनाद, वीणा—वादन मूर्च्छना, मायूरी—मार्जना, भावनृत्य, रागबन्ध, संगीतशाला, मिजराव।

संगीत शब्द में तीन कलाओं का संगम है— गीत वाद्य तथा नृत्य— गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रय संगीतमुच्यते। भारतीय संस्कृति में शिव को वाङ्मय और संगीत दोनों धाराओं का जनक एवं अधिष्ठाता माना गया है। वे नटराज हैं, वे जब नृत्यारम्भ करते हैं तो सम्पूर्ण संगीत साकार होता है और नृत्तावसान करते हुए डमरुनाद करते हैं तो चौदह सूत्र ध्वनित होते हैं जिन पर पाणिनीय व्याकरण आधारित हैं गीति की प्रस्तुति वाद्य—वादन के साथ ही कर्णप्रिय और मनोहारी लगती है। पद्यबद्ध काव्य के छन्द भी संगीत में ढले बिना शुष्क और कर्णकटु लगते हैं। इसलिए काव्य और नाट्य में संगीत के प्रसंग जोड़कर कवियों ने अपनी कृतियों को रमणीय बनाया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने विभूतियोग का वर्णन करते हुए कहा है— वेदानां सामवेदोऽस्मि।¹ इसका आशय है कि ऋचा साम के योग से चारुतर बनती है। इस—भाव के अनुरूप छन्दों का चयन कवि की काव्य कुशलता का द्योतक होता है क्योंकि छन्दों की संगीतात्मकता से कविता में विशेष प्रभाव उत्पन्न होता है।

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण मूलतः लव—कुश द्वारा गाया हुआ संगीतबद्ध महाप्रबन्ध है जिसमें आदि कवि ने प्रकृति के वातावरण में संगीतपरक अनेक सुन्दर उत्प्रेक्षाएं संगीत की पारिभाषिक शब्दावली के साथ प्रस्तुत की हैं। वर्षा—वर्णन में वन में प्रवृत्त निसर्ग—संगीत का चित्र कितना मनोहारी है—

षट्पादतन्त्री मधुराभिधारं प्लवंगमोदीरित कण्ठतालम्।

आविष्कृतं मेघ—मृदंगनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्।²

भ्रमरों का गुंजन तन्त्री (वीणा) की झंकार जैसी मधु धारा बहा रहा है, वानरगण कंठ से ताल ध्वनि कर रहे हैं, और मृदंगनाद के समान मेघ गरज रहे हैं, लगता है जैसे जंगलों में संगीत का नैसर्गिक आयोजन हो रहा है। शास्त्रों का यही मत है कि संगीत के सातों स्वर पशु-पक्षियों की ध्वनियों से ही लिये गये हैं।

महाभारत में अज्ञातवास के समय वृहन्नला के वेष में अर्जुन विराट राजा की पुत्री उत्तरा को संगीत के तीनों अंगों की शिक्षा दी हैं—

स शिक्षयामास च गीत वादितं
सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः।³

भागवत पुराण के श्रीकृष्ण केवल कुशल वेणुवादक ही नहीं अपितु एक विशिष्ट गीतशैली और रासमंडल नृत्य प्रणाली के भी प्रवर्तक हैं। भागवत के गीत तथा रासपंचाध्यायी उनके मोहक वंशीवादन और 'द्वै द्वै गीपी बिच-बिच माधो' की रासलीला के अद्भुत प्रमाण हैं

तन्त्रीवाद्यों में सर्वप्रमुख बाद्य है वीणा जो प्राचीनकाल से देवों द्वारा स्वीकृत रही है। देवर्षि नारद और वागीश्वरी सरस्वती के काव्यमय चित्रणों में वीणा उनके स्वरूप का अभिन्न अंग है। महाकवि माध ने 'शिशुपालवधम्' के प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद का वीणा-वादन करते हुए पृथ्वी पर अवतरण का वर्णन किया है। मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण में नायक चारुदत्त को संगीत प्रेमी और गीत मर्मज्ञ बताया गया है। उनके घर में बाद्यों का जमावड़ा देखकर चोर शत्रिलक भी चकित हो जाता है। चारुदत्त के मुख से गायक रेभिल के गीत की जो समीक्षा नाटककार शूद्रक ने कराई वह उसके संगीत-ज्ञान की परिचायक है।

महाकवि भास ने स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में वत्सराज उदयन को वीणा-वादन में इतना निपुण बताया है कि वह अपने वीणा-वादन द्वारा हाथियों को वशीभूत कर लेता है। घोषवती वीणा उसका प्रिय वाद्य है। वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा देने के दौरान दोनों में प्रेम हो जाता है। वे दोनों वासवदत्ता के पिता के राजमहल से भाग जाते हैं एवं प्रेम विवाह कर लेते हैं।

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।

हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकशवादितम्।।⁴

राजा उदयन विदूषक से कहता है— वीणा बजाना सिखाने के अवसरों में मुझको तन्मय होकर देखने वाली जिस वासवदत्ता के हाथ से मिजराव गिर जाने के कारण अनेक बार शून्य में ही वीणा को बजाया गया।

महाकवि कालिदास संगीत कला के प्रत्येक पक्ष के ज्ञाता हैं। संगीत का समग्र रूप क्या होता है इसका वर्णन मेघदूत में काव्यमय ढंग से किया है—

शब्दायनो मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः

संसक्ताभिस्त्रिपुर विजयो गीयते किन्नरीभिः।

निर्द्वादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्

संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।⁵

हे मेघ! कैलाश पर्वत पर छिद्रों में हवा भरने से कीचक नामक बाँस मधुर वेणुवादन करते हैं, किन्नरियाँ तन्मय स्वर में त्रिपुर विजय के गीत गाती हैं।, उनके साथ यदि तुम

कन्दराओं से प्रतिगुंजित मृदंगबादन के समान गर्जन—ध्वनि करोगे तो नटराज भगवान् पशुपति का संगीतार्थ समग्र बन जायेगा। नर्तन के लिए वंशीवादन किन्नरीगान के साथ मृदंग पर ताल यही तो समग्र संगीत होता है जिसकी कल्पना कालिदास ने कैलाश के शिखरों पर करके अपनी सर्वोच्च संगीत मर्मज्ञता का परिचय दिया है।

इसी प्रकार एक और वर्णन किया गया है—

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य! निक्षिप्य वीणां
मदगोत्रांक विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।⁶

यक्ष का कथन है कि है सौम्य मेघ ! प्रोषित पतिका विरहिणी मेरी प्रिया मलिन वस्त्र पहने हुए गोद में वीणा रखकर नेत्रों के जल से भीगे हुए तन्तुओं को किसी तरह ठीक—ठाक करके मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से संगीत में प्रवृत्त वह अपनी बनाई हुई मूर्च्छना (स्वर विधि) को भी भूलती हुई दिखाई पड़ेगी।

यहाँ प्रयुक्त मूर्च्छना संगीत का पारिभाषिक शब्द है जिसका लक्षण भरत मुनि ने इस प्रकार दिया है—

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छना स्वभि संज्ञिताः।⁷

आरोह—अवरोह क्रमयुक्त स्वर—समुदाय का नाम मूर्च्छना है जिसका प्रयोजन तानों द्वारा राग का विस्तार होता है।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्रम् नाटक के प्रथम अंक के अन्त में मृदंग—वादन के प्रसंग में मायूरी—मार्जना शब्द का प्रयोग किया है जो श्रोता को मदोन्मत्त बना देती है। उदाहरण प्रस्तुत है—

जीमूतस्तनितविंशकिभिर्मयूरैः उद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य।

निर्द्वादिन्युपहितमध्यमस्वरात्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि।⁸

संगीतशाला में मालविका के नृत्य—प्रदर्शन से पूर्व मृदंग—वादन शुरू हुआ है। उस मृदंग—ध्वनि को मेघ—गर्जन समझकर मोर गर्दन उठाकर देखने लगे हैं क्योंकि उन्हें बादलों के गर्जने की अनुभूति हो रही है। मध्यम स्वर से उठी हुई यह मायूरी—मार्जना मन को मदयुक्त बना रही है।

पुष्कर, मायूरी, मध्यमस्वरोत्था, मार्जना शब्द शास्त्रीय है। पुष्कर विशेष प्रकार के मृदंग का नाम है। मार्जना मृदंग के विशेष ताल का नाम है। यह लय मध्यम स्वर से उठकर बढ़ती है। इसलिए उसे निर्द्वादिनी कहा गया है जो मेघगर्जन का पर्याय है। उसे सुनकर मयूर मदमस्त होकर झूमते हुए गर्दन उठाकर गगन में देखने लगे हैं। संगीत के सप्तक का प्रथम स्वर षड्जं (सा) मायूर स्वर कहा गया है। षड्जं वदति मयूरः।

‘मालविकाग्निमित्रम्’ नाटक में नृत्यगुरु गणदास कहते हैं कि शर्मिष्ठा ने मध्यलय में एक चतुष्पदा गीति की रचना की है, उस पर आधारित छलिक नामक भावनृत्य मालविका प्रस्तुत कर रही है। नृत्यगुरु गणदास का यह कथन शास्त्रीय शब्दावली से पूर्ण है। परिव्राजिका इस नृत्य की निर्णायिका है। मालविका के नृत्य के बाद परिव्राजिका उसकी समीक्षा में अपना शास्त्रानुमोदित वक्तव्य देती है जो कालिदास की नृत्य मर्मज्ञता का परिचायक है—

अंगैरन्तर्निहित वचनैः सूचितः सम्यगर्थः

पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।
 शाखायोर्निमृदुरभिनयस्तद् विकल्पानुवृत्तौ
 भावो भावं नुदति विषयाद् रागबन्धः स एव ।।⁹

बोल जैसे अंगों में समा गये हों ऐसे आंगिक अभिनय से नर्तकी ने गीत का अर्थ सम्यक् ढंग से सूचित कर दिया। नृत्य के समय वह रस में तन्मय होकर लय के अनुगत पद संचालन करते हुए थिरक रही थी। हाव-भाव के कई प्रकारों से युक्त अभिनय सुकुमार और शास्त्रीय नियमों के अनुरूप था। सम्पूर्ण नृत्य में एक भाव से दूसरी भाव-चेष्टा निकलकर प्रमुख भाव को स्पष्टतः प्रेरित कर रही थी। इस प्रकार मालविका ने मूल रागबन्ध को नृत्य में साकार कर दिया।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में राजा दुष्यन्त की एक रानी हंसपदिका (नर्तकी) नेपथ्य में प्राकृतभाषा में रचित संगीतबद्ध उपालम्भीगीति गाती है जिसे सुनकर विदूषक राजा दुष्यन्त से कहता है—

भो वयस्य संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि । कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते । जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोति ।¹⁰

(भो वयस्य, संगीतशालान्तरे अवधानं देहि । कलविशुद्धाए गीदि ए सरसंजोओ सूदी अदि । जाणे तत्तहोदी हंसदिआ वर्णपरिअअं करेदिति ।)

हे मित्र, संगीतशाला के भीतर ध्यान दो। अस्पष्ट मधुर तथा शुद्ध (नाम वाली) गीति की स्वर योजना सुनाई दे रही है। मैं समझता हूँ की माननीया हंसपदिका स्वर साध रही हैं। इसमें वर्णपरिचय शब्द गीत के अभ्यास (रियाज) का वाचक शब्द है।

12वीं शताब्दी में बंगनरेश लक्ष्मणसेन के सभारत्न कवि जयदेव नं गीतगोविन्दम् की रचना की। उनके द्वारा विरचित गीत —

श्रितकमला कुच-मण्डल धृत-कण्डल ए
 कलित ललित-वन-माल जय जय देव हरे ।¹¹

वर्तमान समय में धार्मिक स्थलों पर गया जाता है।

निष्कर्ष —

विद्वान् कवियों ने साहित्य में संगीत कला का अद्भुत वर्णन किया है। साहित्य में संगीत पूर्णरूप से समाहित है। संगीत के अभाव में साहित्य में वह सरसता एवं लयात्मकता दृष्टिगोचर नहीं होती जो संगीत के साथ दिखाई देती है। विद्वान् काव्यकारों को संसार में इसलिए अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई क्योंकि उन्होंने अपने काव्य साहित्य में संगीत का प्रयोग सोने में सुगन्धि जैसा किया है और उनकी रचनाएँ न केवल विद्वानों के मध्य बल्कि जनमानस में भी स्थान पा सकी एवं अपनी अमिट छाप छोड़ गई। उनका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची —

1. श्रीमद्भगवद्गीता 10/22
2. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण 4/28/36
3. महाभारत 4/11/12
4. स्वप्नवासवदत्तम् 5/6
5. मेघदूतम् 1/56
6. मेघदूतम् 2/23

7. नाट्यशास्त्र
8. मालविकाग्निमित्रम् 1 / 21
9. मालविकाग्निमित्रम् 2 / 218
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (पंचमअंक)
11. गीतगोविन्दम्